अध्यात्म आंतरिक पवित्रता का दर्पण

-ब्र.कु.अनुज,दिल्ली

पवित्रता यदि व्यवहार में उतर आए तो समाज उसे नैतिकता का नाम देता है, परंतु वही पवित्रता यदि संस्कारों में समाहित हो जाए तो उसे अध्यात्म कहते हैं।

वैसे तो ज़्यादातर मनुष्य इस बात से पूर्णत: अनभिज्ञ हैं कि वे अपने आप में आध्यात्मिक हैं, परन्तु परिवार, समाज, पद, प्रतिष्ठा और धन संचय में वे अपनी मूल प्रवृत्ति को पूर्णतया भूल चुके हैं। इसी भूल के कारण वे अपने आप को इस पथ से अलग मानते हैं और कहते हैं कि आध्यात्मिकता हमारा विषय नहीं है।

यहाँ हम एक बात कहना चाहेंगे कि आज आपके पास मनुष्य हैं, मशीन हैं, मटीरियल है, यांत्रिकी है, इन सबको चलाने के लिए हमारे पास मन है, परन्तु आज मन अशांत है तो क्या ये सारी चीज़ें तारतम्यता के साथ चलेंगी? शायद नहीं। इसलिए मन को चलाने के लिए मेडिटेशन चाहिए और मेडिटेशन या ध्यान आध्यात्मिकता ही है। इससे एक बात पूर्णतया सत्य प्रतीत हो रही है कि मनुष्य एक आध्यात्मिक जीव है, उसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। अध्यात्म प्रकृति का एक शाश्वत नियम है, जहां प्रकृति है वहां अध्यात्म है। कहते हैं कि प्रकृति के विरुद्ध या विपरीत जो कुछ भी है वो विकृति है। विकृति में अध्यात्म न होकर केवल पराजय, पतन आदि स्थित होते हैं। जिसकी प्रकृति ठीक होती है, उसका जीवन सरस व सरिता के समान निर्बाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। जीवन के समस्त आयामों का सर्वांगपूर्ण विकास एवं संवर्धन अध्यात्म है। अध्यात्म का नियम है कि वो हमेशा आपको सही मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। जीवन का मर्म बोध व उसकी गहराई को समझने के लिए इसके अंदर झांकना पड़ता है।

आज मनुष्य की मनोस्थिति इसलिए भी दुर्बल है क्योंकि आज वह अपनी महत्वकांक्षाओं, तृष्णाओं और व्यक्तिगत स्वार्थों के बीच सिमटा हुआ है। अगर इसको साधारण शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि वो काम, क्रोध, लोभ, मोह, इर्ष्या, द्वेष आदि में पूर्णतया लिप्त है। इसके कारण वो अपने मूल स्वरूप व आध्यात्मिक प्रकृति से दूर है। आध्यात्मिक जीवनशैली अपने ऊपर नियंत्रण करना सिखाती है। स्वयं के लिए कठोरता के साथ-साथ लचीलापन तथा औरों के साथ उदारता का पाठ आध्यात्मिकता द्वारा हम सीखते हैं। स्वयं के लिए सादगी तथा शेष बचे साधन या संसाधनों का उपयोग जनहित के लिए करना इसका उद्देश्य होता है।

आध्यात्मिक उन्नति के कुछ बिन्दु:

1. यह जीवनशैली हृदय की उदारता की ओर संकेत करती है।
2. यह स्वार्थ को परमार्थ से अलग करती है।
3. आध्यात्मिक व्यक्ति दूसरों की खुशी में अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर रहता है।
4. दूसरों की खुशी में अपनी खुशी समझ वह नदी के प्रवाह के समान बहना नहीं छोड़ता।
5. आध्यात्मिकता की सुगंध व सौंदर्य बांटने से निरंतर बढ़ते रहते हैं।
6. आध्यात्मिकता अंतर के कुसंस्कारों को जड़-मूल सहित उखाड़ने में अपना सबकुछ झोंक देता है।
7. आध्यात्मिक व्यक्ति सांसारिकता से अपने आपको पूर्णतया अलग नहीं मानता। वह संसार में रहते हुए साहसिक रीति से परिवर्तन करता है।
8. आध्यात्मिक साधना हमारे उन्नति के सारे द्वार खोल देती है व हमें सम्पूर्ण पवित्रता से भर देती है।
9. जब पवित्रता यदि व्यवहार में उतर आए तो समाज उसे नैतिकता का नाम देता है, परंतु वही पवित्रता यदि संस्कारों में समाहित हो जाए तो उसे अध्यात्म कहते हैं। अत: उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि अध्यात्म आंतरिक पवित्रता का दर्पण है। ऐसा पवित्र जीवन ही सुसंस्कृत है। मान, सम्मान, ऐश्वर्य उन्हें अच्छे लगते हैं जिनका अंतर्मन खोखला एवं अति शून्य हो। इतिहास गवाह है कि साधनों एवं सम्पन्नता से कोई महान नहीं हुआ है बल्कि आत्मचेतना व आध्यात्मिक विकास को धारण करने वाले पुरुषों को ही सभी ने साष्टांग प्रणाम किया है और आज भी करते ही हैं। वास्तविक अध्यात्म जब आंतरिक सफलताओं का पथ प्रसस्त करता है तो वह आध्यात्मिक पुरुष पूर्णतया उदार व जनमानस के प्रति संवेदनशील हो जाता है। तो आइये, हम भी क्यों ना इस पथ को अपनाकर आंतरिक पवित्रता का दर्पण बन सबको अपने अंदर दर्शन करने हेतु प्रेरित करें। ये कार्य बहुत ही आसान है, बस एक बार चिंतन करने की आवश्यकता है। आप इस पथ को अवश्य अपनायेंगे ये मेरा दृढ़ विश्वास है।

मन की बातें

-ब्र.कु. सूर्य

प्रश्न - हमारे गीत में आया है कि सतयुग में सृष्टि धर्म के चार पाँव पर खड़ी होगी। वो धर्म के चार पाँव कौन-से हैं?

उत्तर - सत्धर्म के चार पाँव होते हैं - सत्य, अहिंसा, प्रेम और पवित्रता। कोई भी धर्म जब इन चारों धारणाओं में सम्पन्न है तो वो अपने सर्वोच्च अवस्था में है और इनमें से कोई एक भी कमज़ोर पड़ने लगता है तो धर्म भी अपनी सतोप्रधान स्थिति से नीचे जाने लगता है। सतयुग में सत्य इतना नैचुरल था कि असत्य से कोई परिचित ही नहीं था। वहाँ की डिक्शनरी में झूठ शब्द का नाम निशान नहीं था। कर्म भी सत्य थे, बोल भी सत्य थे, विचार भी सत्य थे, व्यवहार में भी सम्पूर्ण सत्यता थी। अहिंसा तो मानो सतयुग का श्रृंगार था। वहाँ जानवर भी हिंसक नहीं थे या यों कहें कि हिंसक जानवरों का ही अस्तित्व नहीं था क्योंकि मनुष्य में सम्पूर्ण देवत्व था। इसलिये जीव-जंतु सभी अहिंसात्मक वृत्ति से भरपूर थे। इसीलिये ही कहावत है कि शेर व गाय एक घाट पर पानी पीते थे। वहाँ सभी के अंदर आत्मिक प्रेम था। देह-प्रेम या वासनात्मक प्रेम की वहाँ अविद्या थी। पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं में भी परस्पर अति प्रेम था। पवित्रता से तो वहाँ प्रकृति भी सतोप्रधान थी। किसी भी विकार का अंशमात्र भी वहाँ विद्यमान नहीं था। इन चारों के कारण धर्म भी बहुत शक्तिशाली था और राज्य भी बहुत शक्तिशाली था।

प्रश्न - मैं बहुत निर्बल हूँ। मुझे स्वयं को शक्तिशाली बनाना है, कैसे बनाऊँ? इसके लिए मास्टर सर्वशक्तिवान का अभ्यास ज़रूरी है या शिव-शक्ति का?

उत्तर - स्वयं को शक्तिशाली बनाने के लिए ये दोनों ही अभ्यास आवश्यक हैं। मास्टर ऑलमाइटी का भी अर्थ है कि सर्वशक्तिवान की शक्तियाँ मेरे पास हैं और शिव शक्ति का भी यही अर्थ है, जिसको जो अच्छा लगे उसको वही अभ्यास कर लेना चाहिए। व्यर्थ और नेगेटिव संकल्पों से हमारी एनर्जी नष्ट होती है। जो मनुष्य बहुत ज़्यादा सोचता है, वो उतना ही निर्बल बनता जाता है। दूसरी बात, मनोविकार मनुष्य को कमज़ोर करते हैं। उससे तन की शक्ति भी जाती है और मन की भी। इसलिये शक्तिशाली बनने के लिए विकारों को छोड़ना बहुत आवश्यक है। जितना-जितना हम निर्विकारी बनते जाएँगे, हमारी शक्ति बढ़ती जाएगी। क्रोध तो मानो आत्मा की शक्तियों को जलाने लगता है और अहंकार से सूक्ष्म रूप से शक्तियों का ह्रास होने लगता है। इच्छाएं और ममता मन [illegible] कमज़ोर बनाती हैं। त्याग और एकाग्रता आत्मा को शक्तिशाली बनाने के साधन हैं।

जो जितना अच्छा योग करेंगे, वो उतना ही शक्तिशाली बनते जायेंगे और मास्टर ऑलमाइटी के अभ्यास से सोयी हुई शक्तियाँ जागृत होती रहेंगी। शक्तिशाली बनने का प्रैक्टिकल स्वरूप होगा - हर परिस्थिति में स्थिति को अचल-अडोल रखना। कोई भी बात हो जाने पर मन को तनाव व चिंताओं से मुक्त रखना। कह सकते हैं जो जितना सरल है, वो उतना ही शक्तिशाली है।

प्रश्न - मैं एक गृहणी हूँ। मैं अपने क्रोध से स्वयं ही बहुत परेशान हूँ। कभी बच्चों पर क्रोध आता है तो कभी सास पर। सारा दिन मेरा मन चिड़चिड़ा और तनाव में रहता है। इससे मुझे कई बीमारियाँ भी लग गयी हैं। मैं अपने क्रोध को जीतकर परिवार में प्यार का माहौल बनाना चाहती हूँ। मैं क्या करूँ?

उत्तर - नि:संदेह क्रोध मनुष्य का बहुत भारी शत्रु है। सभी मनुष्य क्रोधी से किनारा करने लगते हैं। क्रोधी व्यक्ति से कोई भी व्यक्ति प्यार नहीं करता। क्रोध के कारण संबंधों में विष घुल जाता है। जब मनुष्य क्रोधित होता है तो उसे अपने बोल पर भी कण्ट्रोल नहीं रह जाता। इसलिये बाद में उसे बहुत पश्चाताप होता है। कभी-कभी मनुष्य का क्षण भर का क्रोध उसके जीवन के लिये बड़ा खतरनाक सिद्ध होता है। क्रोध पर विजय प्राप्त करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि क्रोध से परिवार में बहुत अशांति की ज्वाला दहकती है। क्रोध तो मनुष्य को जीवन का सुख ही नहीं लेने देता।

सवेरे उठकर बहुत शांति में बैठकर 7 बार अभ्यास करें कि मैं आत्मा हूँ...शांत स्वरूप हूँ...इस शांति को बहुत गहराई से स्वीकार करें और अपने को संकल्प दें कि शांति मेरा स्वभाव है, क्रोध मेरा स्वभाव नहीं है। साथ-साथ अपने घर में 3 बार आधा-आधा घण्टा बैठकर राजयोग का अभ्यास करें। आप सबको आत्मा देखकर सबसे प्यार से बात करने का संकल्प करें। कामनाएं मनुष्य में क्रोध को जन्म देती हैं। इसलिये अपनी कामनाओं को कम करते चलें। यदि कोई झूठ बोलता है या ठीक से काम नहीं करता या आपकी आज्ञा नहीं मानता तो आपको उसे प्यार से समझाना है। आपके व्यवहार को देखकर सभी लोग बाबा की ओर आकर्षित होंगे। सबको प्यार मिलेगा और राजयोग के प्रभाव से आत्मा सहज क्रोध मुक्त हो जाएगी।

Contact e-mail - bksurya8@yahoo.com

---

7 कदम राजयोग की ओर...